शिगाफ : एक परिदृश्य

महेन्द्र कुमार

प्रस्तावना :

भारतीय समाज विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों से मिलकर बना है। सभी धर्मों में विश्वास एवं उपासना पद्धतियाँ अलग–अलग हैं। भारतीय संविधान में इन सभी को स्वतंत्रता एवं मान्यता दी गई है। फिर भी कुछ कुत्सित स्वार्थों, कुटिल राजनीति एवं अदूरदर्शिता के कारण परस्पर विश्वास में दरार पड़ जाती है। फलस्वरूप साम्प्रदायिक झगड़े, हिंसा, अत्याचार, बलपूर्वक विस्थापन आदि की समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं, जिनका दुष्प्रभाव सामान्य जनजीवन पर भयंकर रूप से पड़ता है। इन समस्याओं के कारण साधारण मनुष्य की रोजमर्रा की जिन्दगी कितनी दुभर हो जाती है, पग–पग पर कैसी कठिनाईयाँ आती है, उनका सामना कराता है मनीषा कुलश्रेष्ठ का उपन्यास–शिगाफ। यह उपन्यास कश्मीरी विस्थापन की आग में झुलसकर तड़पती हुई जिन्दगियों का दर्शन कराता है। "शिगाफ उस दरार का द्योतक है जो कश्मीरियत की रूह में स्थायी तौर पर पड़ गयी है।"

"उपन्यास में समस्याओं पर नहीं लिखा गया है। उन छोटी और महत्त्वहीन जिन्दगियों पर लिखा गया है जो बड़ी जिन्दगियों के बनने–बिगड़नें, बड़ी समस्याओं के उलझने और सुलझने की जद्दोजहद में कुचली जाती हैं या पीछे छूट जाती हैं।"[1] इस प्रकार कश्मीरी विभाजन से उत्पन्न त्रासदी पर शिगाफ एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

"संसार को समझना दर्शन का काम है, उसे बदलना राजनीति का और उसकी पुनर्रचना साहित्य का दायित्व है।"[2] बदलाव की राजनीति के खेल से जो दुष्परिणाम सामने आते हैं उनको समाज के सामने लाने में साहित्यिक रचनाएं महत्त्वपूर्ण विधा है। ऐसा ही उपन्यास है शिगाफ। यह विभाजन की त्रासदी से उत्पन्न भयानक परिणामों को हमारे सामने लाता है। यह पाठक के मन को स्पन्दित करता है। इसे पढ़कर उन मनुष्यों के प्रति मन पीड़ा से भर जाता है जो उन गलतियों की सजा भुगत रहे हैं जिनका गलतियों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

उपन्यास उन त्रुटिप्रदत्त दुष्परिणामों का निकष है जो पूर्व में राजनैतिक अथवा साम्प्रदायिक कारणों से हुई हैं। इस दृष्टि से विस्थापन की त्रासदी पर आधारित साहित्य में शिगाफ एक अध्याय की तरह जुड़ जाता है। इसके अतिरिक्त उपन्यास में ब्लॉग और ई–मेल से संवाद सम्प्रेषण का नवीन प्रयोग है। यह भविष्य में शिल्प के विस्तार की संभावनाओं का सूचक है।

प्रासंगिकता के संदर्भ में कहना न होगा कि वर्तमान संकट से व्युत्पन्न परिस्थितियों पर रचित साहित्य की प्रासंगिकता कितनी है? शिगाफ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः प्रासंगिक उपन्यास है। उपन्यास के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष साहित्य की व्यापकता को विस्तार देंगे। उपन्यास में त्रासदियों से जूझती जिन्दगियों के अतिरिक्त समानान्तर क्रम में नारी की व्यथा–कथा भी है। नारी मन की कोमल भावनाओं, भविष्य के सपनों तथा उनके साथ होने वाली क्रूरताओं का चित्रण उपन्यास में विशेष रूप में हुआ है। स्त्री–विमर्श के इस दौर में यह प्रासंगिक है।

लेखिका ने सप्रयास समस्याओं पर लेखनी नहीं चलाई है, अपितु स्वतः ही उपन्यास में पाठक के सम्मुख समस्याओं का उद्घाटन होता चला जाता है।

प्रमुख रूप से निम्न समस्याएँ सामने आती है–

- क्र धर्म के नाम पर निर्दोष और मासूम महिलाओं पर होने वाला अत्याचार।
- क्र कश्मीरी मुस्लिमों का विश्व–भर में शक की दृष्टि से देखा जाना।

क्र परस्पर विश्वास का टूटना और सम्बन्धों में दरार पड़ना।

क्र कठिन परिस्थितियों से जूझते कश्मीरियों की आर्थिक समस्याएँ।

क्र स्वार्थ आधारित गुटों के बीच संवादहीनता की समस्या परिणामस्वरूप आम सहमति नहीं बन पाना।

क्र बच्चों के भविष्य के प्रति सशंकित अभिभावकों के मानसिक व्याघात।

क्र सैनिकों की मानसिक, शारीरिक, पारिवारिक एवं आर्थिक समस्याएँ।

उपन्यास में सीधे तौर पर किसी भी राजनीतिक विचारधारा का पक्ष नहीं लिया गया है। फिर भी, विभिन्न पात्रों के पक्ष एवं निजी मतों के आधार पर कुछ चर्चा की जा सकती है। लेखिका का विचार है कि कश्मीरी पंडितों के विस्थापन के मूल में राजनीतिक उदासीनता का योग है। यदि कश्मीरी पंडित राजनैतिक रूप से संगठित होते तो समस्या इतनी नहीं उलझती। उपन्यास का पत्रकार जमान कहता है "मेरे ख्याल से पंडित गैर सियासी थे इसलिए खमियाजा भुगतते रहे।"

उपन्यास में यह संदर्भ सामने आता है कि लोगों का नजरिया समस्या के प्रति एकांगी है तभी समस्या समाधान हेतु आम सहमति नहीं बन पाती है। जमान कहता है कि "यह सबसे बड़ा सच है कि असली सच तो कश्मीर में पहले बम धमाके में मारा गया। यहां एक सच तुम्हारे लिए है तो दूसरा हिन्दुस्तानी पत्रकार के लिए, तीसरा कश्मीरी पत्रकार के लिए और चौथा आर्मी के लिए, पाँचवां मिलिटेंट (आतंकवादी) के लिए, छठा विदेशी मीडिया और सातवाँ मानवाधिकार आयोग के लिए। जुलूस में मुखौटा ओढ़े चलती है आइडियोलॉजी। सच–झूठ की मानसिकता के पीछे पहला कारण आत्मरक्षा है।"[2]

1947 में कौन जानता था कि विभाजन इतना भयानक होगा। भाड़े के आतंकी आते है, धमाका करके भाग जाते हैं। मुस्लिम हितों के नाम पर सर्वप्रथम पंडितों को भगाया गया, फिर मुस्लिम औरतों पर पाबंदियाँ, नहीं तो तेजाब। अजहर ब्लॉग के माध्यम से कहता है, "मेरी समझ में नहीं आता, दरगाह बरबाद करने वाला इस्लाम का हीरो कैसे हो सकता है? कश्मीरी असमंजस में हैं कि इस्लाम को वे लोग कैसे बचाएंगे जो नमाजियों और दरगाहों पर ग्रेनेड फेंकते हैं? सरकार का भरोसा नहीं। वह कठपुतली है। मौकापरस्त है।"

अमिता, शान्तनु तथा जमान की बहस से कुछ राजनीतिक विचार सामने आते हैं। सेना की तैनातगी पर आक्षेप का उत्तर देते हुए शान्तनु कहते है, "सेना में कोई भी अपनी खुद की मर्जी से यहाँ तैनाती नहीं चाहता। वो सरकारी व्यवस्था के तहत यहाँ तैनात है। सरकारी पॉलिसी के तहत, जो जनता की चुनी सरकार की पॉलिसी है।"

कश्मीर को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का शिकार भी बताया गया है। यहाँ चीन और अमेरिका अपने काँटे डाले बैठे हैं। साथ ही पंडित नेहरू के उस कदम पर भी आक्षेप है जिसके तहत यह मसला यू.एन.ओ. में ले जाया गया। कश्मीरी राजनीति में उपेक्षित तथ्यों की तरफ भी उपन्यास संकेत करता है। कश्मीर में लेह–लद्दाख तथा जम्मू के निवासियों के राजनीतिक विचारों की उपेक्षा की जाती रही है। कश्मीरी मुस्लिमों में भी एकमत नहीं है। एक गुट अलगाववादी है तो दूसरा पाकिस्तान के पक्ष में तथा एक धड़ा भारत के पक्ष में है। इस प्रकार विभिन्न राजनैतिक विचार सामने आते हैं।

उपन्यास में प्रमुख स्त्री पात्र हैं, स्वयं अमिता, यास्मीन, जुलेखा, नसीम, नौशाबा तथा नज्म। ये सभी पात्र आधुनिक नारी के अस्तित्व तथा प्रगतिशील विचारों को प्रदर्शित करते हैं। अमिता खाती–पीती–जीती औरत है, वायवीय नहीं, वह पुरूष की गंध को, अचानक जाग उठी कामनाओं और शारीरिक प्रतिक्रियाओं को अत्यंत सहज–सरल, सुन्दर ढंग से सामने रखती है। वह अपने अस्तित्व को पहचानती है। इयान बॉण्ड के साथ अन्तरंग क्षणों में पीछे हट जाती है, उसे अपना अतीत याद आ जाता है। अपनेपन की चौखट पर खड़ा बेगानापन। उसके पिता उसका विवाह मेजर शान्तनु से करना चाहते हैं। स्वयं वह इयान बॉण्ड तथा पत्रकार जमान की तरफ आकर्षित है। पिता के अकेलेपन को समझती है, शान्तनु से शादी करके उस अकेलेपन में कमी ला सकती है। फिर भी, पिता के अकेलेपन से अधिक अपने अस्तित्व को समझती है। विवाह नहीं करती। पुरूष का साथ भी चाहती है। जमान से कहती है–"हम किसी दूसरी तरह से नहीं जी सकते थे? जिसमें न निभने पर तलाक की जरूरत नहीं होती।"

'यास्मीन की डायरी' उपन्यास का महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। यास्मीन और अमिता बचपन की सहेलियां है। चिनार की दो पत्तियाँ।

एक पत्नी है अमिता दूसरी यास्मीन। दहशतगर्दी तथा फतवों के बीच भी वह अपने भविष्य तथा अस्तित्व को लेकर सजग है। कॉलेज में कॉमर्स पढ़ने की इच्छा है। तेजाब फेंकने तथा अपहरण की घटनाओं से नहीं डरती। वसीम से प्रेम करती है जो कि आतंकवादी है। उसकी तबाही का कारण वसीम ही है। फिर भी प्रेम के आगे कमजोर महसूस करती है। उसके भीतर सब कुछ टूट चुका है। वसीम से शिकायत है–"तुमसे आकर लोग पूछेंगे, भूले–लापता लोगों के पते ठिकाने, तुम क्या जवाब दोगे?" डायरी के अन्त में क्षोभ–

"तु खेलता है नूर से मेरे यकीन के
जलवे भी देंगे न पनाह, तुझे इस जमीन के"

नौशाबा आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्री है। वह अंग्रेजी में कश्मीर की पहली फीमेल पत्रिका 'ग्रेस' निकाल रही हैं। मैगजीन में कश्मीरी औरत के डिप्रेशन की चर्चा करती हैं। कहती है, "हम भी सेक्स पर बात कर सकती है.....मगर जरूरत क्या है? इस्लाम की खिलाफत किए बिना भी हम आजाद होना भीतर महसूस कर सकती हैं क्योंकि असल आजादी भीतर की है।" मजाज के इस शेर का समर्थन करती हैं–

"तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही खूब है लेकिन
तू इस आँचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था।"

एक अन्य स्त्री पात्र है नसीम। औसत स्तर की पढ़ी–लिखी लेकिन बहुत आत्मसजग और चतुर। तलाकशुदा। कश्मीर से दिल्ली आई है अपने लिए पति और बेटे के लिए बाप ढूंढने। आजाद ख्याल औरत। कहती है, "ये मर्द न, उसी चीज की कदर करते है जिसे पाने के लिए उन्हें अपना वजूद रगड़ डालना पड़े।"

कुल मिलाकर उपन्यास में स्त्री पात्रों का अस्तित्व स्पष्ट है। "उपन्यास वृहतर अर्थ में मनीषा कुलश्रेष्ठ का आत्मालाप है। एक तरह का आत्म–संवाद।" मनीषा कुलश्रेष्ठ भी उपन्यास में वही घटनाएँ जोड़ रही है जो अमिता अपनी पुस्तक में जोड़ रही है। उपन्यास में नारी की व्यथा–कथा साथ–साथ चलती है।

कश्मीर का इतिहास हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति का साझा इतिहास रहा है। सन् 47 के बाद इसका ताना–बाना अत्यन्त जटिल बना। समाज में टकराव की स्थिति लाने में पाकिस्तान ने भरसक प्रयास किये तथा अब भी जारी है। अमिता हिन्दू समाज की स्थिति पर संशय करती है। "हमारे पास क्या कमी थी–समृद्धि और पुराणों को लेकर अब तक चला आ रहा सांस्कृतिक इतिहास.....बुद्धिमत्ता..... सौन्दर्य। राजनीतिक दूरदृष्टि भी यहाँ काम नहीं आई। जंगल में रहने के लिए आवश्यक एक पारिस्थितिक समीकरण और चौकन्नेपन की..... बहुत बड़ी कमी थी शायद हमारे पास। वह कमी थी जंगलीपन और वहशीपन की, जिसकी वजह से हमें अपनी जन्मभूमि से भगाया गया।"

अमिता अपने निर्वासन का कारण कविता में प्रदर्शित करती हैं–

मैं आज निर्वासित हूँ.....क्योंकि तुमने चुना था निहत्थों को मारना।

मैं आज निर्वासित हूँ.....मैंने चुना सम्मान से जीना.....हथियार न उठाना।

मैं आज निर्वासित हूँ.....क्योंकि पूरा संसार चुप रहा। महज कुछ लोग ही तो मर रहे थे।

मैं आज निर्वासित हूँ.....क्योंकि मेरा भारतीय होने में विश्वास था।"

अमिता के भाई अश्वत्थ का मित्र वजीर अपने समाज के द्वारा करवाये गये विस्थापन से खिन्न हैं कहता है–मैं चाहता हूँ तू खुद आकर आँखों से देखें कि तुम्हें जड़ों उखाड़कर हम कितना जम सके हैं।" कश्मीर का मुस्लिम समाज भी आतंक से संकट में है। उन्हें पूरे विश्व में संदेह से देखा जा रहा है। एक विशाल वृक्ष को उखाड़ने के प्रयत्न में आस–पास के पेड़ भी उखड़ गये। उनकी जड़ों से संदेह विपका है। आतंकवाद की मार कश्मीरियों को आर्थिक दृष्टि से विपन्न कर चुकी है। उपन्यास में पहलगाम के आस–पास के गांवों की आर्थिक स्थिति का वर्णन हैं। गांवों में वृद्ध, बच्चे और औरतें ही बचे हैं। कमाने वाले वयस्क आतंक की भेंट चढ़ चुके हैं। हर घर में बेवाएँ नजर आती हैं। आर्थिक संकट आतंक से किस प्रका बढ़े हैं, उसका दिग्दर्शन

उपन्यास करवाता है। सेना की तैनाती पर अंगुली उठाने वाले भूल जाते हैं कि विपरीत परिस्थितियों में रसद की आपूर्ति सेना के कारण संभव होती है।

आतंक के जाल में फंसे कश्मीर में चारों तरफ से पैसा आ रहा है। लोग दोनों हाथों से बटोरने में लगे हैं। इस पर वजीर कहता है "बदअमनी का लम्बा–चौडा कारोबार फैला हो तो कौन अमन चाहे? न मिलिटरी, न मिलिटेंट। एन.जी.ओ. की मुफ्त रोटी..... सऊदी अरब से मिलता शोरबा.....किसको भुखमरी में लिपटा अमन चाहिए?"

"उपन्यास में ब्लॉग, ई–मेल के माध्यम से सम्प्रेषण का नवीन प्रयोग हुआ है। इस किताब से ब्लॉग, ई–मेल वगैरह–वगैरह कब्जाधारियों को स्थायी आवास का पट्टा मिल गया है। साहित्य में कम्प्यूटर विधाओं का दखल बढ़ रहा है, देखना यह है कि संवेदन सम्प्रेषण को और तीक्ष्ण धार देता है या तकनीकी यथार्थ बनकर रह जाता है।"[5]

"किसी हद तक विवरण विचलित कहते हैं क्योंकि शिल्पगत प्रयोग सुन्दर है। उपन्यास में जन्म–विवाह–मृत्यु, पत्तो का झरना, फूलों का खिलना और फिर फलों से लद जाना, बर्फ का गिरना, केसर का जामुनी रंग, नीले–सलेटी रंग और सफेद फूल, कविताएं, गीत और शेर सब बहुत खुबसूरती से आए हैं। उपन्यास की भाषा लिददर नदी की तरह है, कभी शोर मचाती कभी गुनगुनाती है। उर्दू–बहुल होते हुए भी साधारण पाठक की सीमा में है। अंग्रेजी, कश्मीरी तथा स्पेनिश के भी शब्द हैं।"[6] कुछ रूपक और उपमाएँ–

- क्र पल कठपुतलियों की शक्ल में लेंगे और अदृश्य धागो में बँधे बीते समय को अतिरंजित और अति नाटकीय तरीके से पेश करेंगे।
- क्र शतरंज की गोटियों की तरह लाशें हटाते और फिर खेल शुरू।
- क्र क्या मेरे भीतर यह नन्हा पंछी जिन्दा है या मैं अपने भीतर एक कब्र लिए बैठी हूँ?
- क्र क्या आप किसी जनाजे में शामिल होकर मरहुम से भी ऐसे ही सवाल करते है? कैसा लग रहा है आपको मर कर?
- क्र कश्मीर.....केक में रेजर के टुकड़े।
- क्र कफन कैसा भी हो, लाश को क्या फर्क पड़ता है।

बड़ी जिन्दगियों के बनने–बिगड़ने की जद में कुचली या पीछे रह गयी जिन्दगियों का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। लेखिका कुछ जिन्दगियां और शामिल कर लेती तो संवेदना व्यापक फलक पर आ जाती जैसे–एक तैनात सैनिक की जिन्दगी–कम छुट्टियाँ, कम तनख्वाह, मीलों की दूरी। उनकी जिन्दगी भी एक व्यवस्था के तहत कुचली जाती रही है।

यह उपन्यास विस्थापन और आतंकवाद की कोई व्याख्या या समाधान प्रस्तुत नहीं करता वरन् आस्था–अनास्था की बर्बर लड़ाईयों के बीच, कुचले जाने से रह गये कुछ जीवंत पलों को जिलाता है और जमीन पर गिर पड़े दिशा संकेतक बोर्ड को उठाकर फिर–फिर गाड़ता है, जिस पर लिखा है मेरे भाई, अमन का एक रास्ता इधर से भी होकर गुजरता है।

सीनियर रिसर्च फैलो
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सदर्भ सूची

1,3,4 उपन्यास से
2. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास–रामस्वरूप चतुर्वेदी
5. परमानन्द श्रीवास्तव, आलोचना, सितम्बर, 2011
6. लता शर्मा, हंस, अप्रैल, 2011